॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

कठोपनिषद

विषय सूची

॥अथ यजुर्वेदीया कठोपनिषद् ॥ 3

॥प्रथमेध्याये: प्रथम अध्याय॥ 4

॥प्रथम वल्ली॥ 4

॥ द्वितीय वल्ली ॥ 17

॥तृतीय वल्ली॥ 27

॥द्वितीयाध्याये : द्वितीय अध्याय॥ 34

॥प्रथमा वल्ली॥ 34

॥द्वितीया वल्ली॥ 40

॥तृतीया वल्ली॥ 46

शान्ति पाठ 53

॥ श्री हरि ॥

॥अथ यजुर्वेदीया कठोपनिषद् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ कठोपनिषद॥

॥प्रथमेध्याये: प्रथम अध्याय॥

॥ अथ प्रथम वल्ली ॥

॥प्रथम वल्ली॥

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥१॥

यह एक इतिहास है कि मुक्ति की इच्छा रखने वाले वाजश्रवस ऋषि ने अपने सब धनादि पदार्थ को यज्ञ द्वारा दान मे दे दिया, अर्थात् सर्व मेध नामक यज्ञ किया, (जैसा कि विधान है कि संन्यास धारण करने वाला मनुष्य सर्वमेध नामक यज्ञ को पूर्ण करे और उसी यज्ञ में सब पदार्थों को दान मे दे दे) उस का नचिकेता नामक पुत्र था।

तꣳह कुमारꣳसन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत
॥२॥

उस समय कुमार दशा में ही जब यज्ञ की दक्षिणा में गौओं का विभाग होने लगा तब उस नचिकेता के अन्दर श्रद्धा उत्पन्न हुई तब उसने विचार किया कि:

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥३॥

वह मनुष्य सुख भोग साधन हीन अर्थात् दुःख साधनयुक्त स्थानों को प्राप्त होता है जो दक्षिणा में ऐसी गौए दान देता है जो कि जल पी चुकी हैं, घास खा चुकी हैं, दूध दे चुकी हैं और बच्चे देने में असमर्थ हैं अर्थात् बूढ़ी हैं।

आशय यह है कि वाजश्रवस ने सर्वमेध यज्ञ की दक्षिणा में बूढ़ी गौए भी दान में दे डालीं, तब नचिकेता ने विचार कि ऐसी बूढ़ी गायों के देने से तो उत्तम फल पिता को प्राप्त न होगा, हां बूढी गायों के सिवाय वह मुझे दान में दे डालते तो उत्तम होता।

स होवाच पितर तत कस्मै मां दास्यसीति।
द्वितीयं तृतीयं तꣳहोवाच मृत्युवे वा ददामीति ॥४॥

ऐसा विचार कर वह पिता से बोला कि हे तात ! मुझे किस को दोगे। यह बात उसने दुबारा और फिर तीसरी बार कही, तब पिता ने कहा कि मैं तुझे मृत्यु अर्थात् यमराज को देता हूँ ।

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किꣳस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥५॥

बहुत मनुष्यों में मैं प्रथम हूँ, अर्थात् उत्तम हूँ और बहुतों में मध्यम हूँ, मुझ से यम का क्या कार्य सिद्ध होगा, अर्थात् नचिकेता ने मन में विचारा कि मैं किसी से उत्तम किसी से मध्यम हूँ, किन्तु निकृष्ट किसी से भी नहीं हूँ तब पिता ने मुझे मृत्यु के लिये क्यों दिया, नचिकेता के हृदय में मृत्यु से डर नहीं था किन्तु पिता के वियोग का दुःख अवश्य था । पिता के हृदय में भी इस बात का दुःख था कि पुत्र को क्रोध में जो कह दिया उसका पालन अवश्य मुझे करना चाहिये, किन्तु वह पुत्र को अपने से वियुक्त नहीं करना चाहता थे, यह देख कर नचिकेता ने कहाः

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य यथा परे ।
सस्यमिव मत्यैः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६॥

पूर्व पुरुष पिता पितामह आदि ने जैसा धर्माचरण किया है उसको (अनुपश्य) विचार कीजिये, इसी प्रकार (परे) अर्थात् वर्तमान् धर्मात्माजन (प्रतिपश्य) अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हैं आप भी उसी प्रकार करें अर्थात् आपने मुझे मृत्यु को देने की प्रतिज्ञा की है सो उसे पूर्ण कीजिये । प्रतिज्ञा से विरुद्ध करके कोई अमर नहीं होता, क्योंकि मनुष्य खेती के समान जीर्ण होता है अर्थात् वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मर जाता है और मर कर खेती के समान पुनः उत्पन्न होता है अतः ऐसे अनित्य शरीर को पाकर मनुष्य को कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिये। नचिकेता की इस बात को सुन कर पिता ने उसे यम के पास भेज दिया।

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिब्रह्मणो गृहान् ।
तस्यैताः शान्ति कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥७॥

नचिकेता जिस समय यम के गृह पर पहुँचा उस समय यम वहां नहीं थे, उनकी स्त्री आदि के कहने पर भी नचिकेता ने भोजनादि कुछ नहीं किया और बिना भोजन पान के तीन दिन तक घर पर पड़ा रहा, जब तीसरे दिन यम आए तो उनकी भार्या ने यम से कहा कि आपके घर में अग्नि के समान क्रान्तियुक्त ब्राह्मण अतिथि आया हुआ है सज्जन लोग ऐसे अभ्यागत की शान्ति करते हैं। इसलिये आप जल आदि सत्कार की सामग्री को लीजिये और उसकी पूजा कीजिये।

अशाप्रतीने संगतः सुनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूःश्च सर्वान् ।
एतद्वृंकते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानभवसति ब्राह्मणो गृहे ॥८॥

यम की भार्या आदि ने और भी कहा कि जिस पुरुष के घर में भोजनादि न करके ब्राह्मण अतिथि वास करता है, उस निबुद्धि की आशा और इष्ट वस्तु की प्राप्तिरूप प्रतीक्षा (सङ्गत) अर्थात् सत्सङ्गति से होने वाला फल (सूनृता) दयापूर्वक कही गई सच्ची वाणी और इष्टापूर्त यज्ञादि वैदिक कर्म और आपूर्त वापी कूप तड़ागादि का निर्माण, पुत्र और पशु इन पूर्वोक्त आशादि के सारे फल को वह अतिथि नष्ट कर देता है इसलिये श्रेष्ठ अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिये।

तिस्रो रात्रीयेदवासीगृहे मेऽनश्नन्ब्रमनतिर्थनमस्यः ।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रतिश्रीन्वरान्वृणीष्व।॥९॥

अपनी स्त्री आदि के ये वचन सुन कर यम ने नचिकेता से कहा हे ब्रह्मन् , ब्रह्मधर्मस्थ ! तुम अतिथि पूजा करने के योग्य हो। मेरे घर पर बिना भोजन किये जो तुम तीन रातों से रहो हो उसके प्रत्येक दिन के बदले में एक एक वर मांग लो, हे ब्रह्मवित् ! तुमको नमस्कार हो, तुम्हारी कृपा से मेरा कल्याण हो।

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्रीतमन्युगौर्तामो माभिमृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्यतीतएतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥

यमराज के आदर को प्राप्त करके नचिकेता ने कहा हे मृत्यो ! आचार्य !! मेरे पिता गौतम शान्त सङ्कल्प और प्रसन्न मन जैसे हो और मेरे प्रति क्रोध रहित हो जाएँ, एवं आपके यहाँ से वापिस जाने पर मुझ को जाने और मुझ से वार्तालाप करे यही तीनों वरों में से पहला वर मैं आप से माँगता हूँ ।

यथापुरस्ताद्भविताप्रतीत औदालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ।
सुख२रात्रीःशयितावीतमन्युस्त्वांददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्। ॥११॥

यमराज ने कहा-

हे नचिकेता ! तुझे मेरे यहाँ से वापिस जाने पर औद्यालकि अरुणि तुम्हारे पिता पहले के समान ही तुझ से प्रसन्न होंगे, वह सुख पूर्वक

रात को सोयेंगे, क्रोध रहित हो जायेंगे और तुम को मरण के भय से मुक्त हुए देखेंगे।

स्वर्ग लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया विभेति ।
उभे तीर्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

स्वर्ग लोक अर्थात् जो स्थान सर्वोत्तम सुख के साधन हैं। वहाँ भय के साधन, चोर और रोगादि सर्वथा नहीं होते, जहाँ वृद्धावस्था के नैर्वल्य दुःख से कोई प्राणी नहीं डरता है, उस स्थान में भूख और प्यास को अतिक्रमण करके शोक रहित होकर मनुष्य परम प्रसन्न होता है, उस स्वर्ग लोक को मैंने सुना है आप मुझ से कहिये ।

स त्वमग्निꣳ स्वग्र्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहितꣳ श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥

नचिकेता ने फिर कहा-

हे मृत्यो ! हे यम ! आप स्वर्ग प्राप्ति के साधन अग्निहोत्रादि रूप यज्ञ को जानते हैं, जिससे स्वर्ग लोक अर्थात् यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले जन (अमृत) दीर्घ जीवनादि सुख को प्राप्त किया जाता है उसी को श्रद्धा रखते हुए मेरे लिये कहिये, यह मैं द्वितीय वर माँगता हूँ।

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निंनाचिकेत: प्रजानन
अनन्त लोकाप्तिमथो प्रतिष्ठा विद्धि त्वमेतन्निहितं गुहाग्राम ॥१४॥

यम बोले:

हे नचिकेत: ! स्वर्ग के हितकारी उस अग्नि को जानता हुआ मैं तेरे लिये कहता हूँ-तू मेरे वचन को सावधान होकर सुन, अनन्त लोक को व्याप्त करने वाली और सब संसार की स्थिति का साधन इस अग्नि को आत्मा की शक्ति रूप बुद्धि में स्थिति समझ–अर्थात् जो अग्नि जगत् की उत्पत्ति विनाश स्थिति का हेतु है, वही यज्ञ का मुख्य साधन है।

लोकादिमग्नि तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा ।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युपुनरेवाह तृष्ट : ॥१५॥

यमराज ने उस स्वर्गलोक की कारणरूपा अग्निविद्या का नचिकेता को उपदेश दिया। उसमें कुंड निर्माण आदि के लिए जो जो और जितनी सामग्री आदि आवश्यक होती हैं तथा जिस प्रकार उनका चयन किया जाता है वे सब बातें भी बताईं। तथा उस नचिकेता ने भी वह जैसा सुना था ठीक उसी प्रकार समझकर यमराज को पुन: सुना दिया। उसके बाद यमराज उस पर संतुष्ट होकर फिर बोले।

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भय:।
तवैव नामा भवितायमग्निः सुंकां चेमामनेकरूपां गृहाण॥१६॥

नचिकेता की बुद्धि से प्रसन्न हुए यमराज ने पुनः कहा कि हे नचिकेतः! तुझे मैं इस समय एक और वर देता हूँ कि वह अग्नि तेरे ही नाम से

प्रसिद्ध होगी, तथा इस अनेक रूपों वाली रत्नों की माला को भी तुम स्वीकार करो।

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धि त्रिकर्मकृत्तति जन्ममृत्यु ।
ब्रह्मजज्ञं देवमीद्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

इस अग्नि का शास्त्रोक्त रीति से तीन बार अनुष्ठान करने वाला तीनों ऋक्, साम, यजुर्वेद के साथ संबंध जोड़कर यह दान और तपरूप तीनों कर्मों को निष्कामभाव से करने वाला मनुष्य जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्मा से उत्पन्न सृष्टि के जानने वाले स्तवनीय इस अग्निदेव को जानकर तथा इसका निष्कामभाव से विधिपूर्वक चयन करके इस अनंत शांति (जो मुझको प्राप्त है) को प्राप्त कर लेता है।

त्रिणाचिकेतस्त्रयभेतद्विदित्वा य एवं विद्वाश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

ब्रह्मचर्यादि तीन आश्रमों में नाचिकेत अग्नि का जिस ने तीन बार सञ्चय किया हो, ऐसा मनुष्य, जो पूर्वोक्त तीनों को जानता है और जो विद्वान् पुरुष नाचिकेत यज्ञ के फल को सञ्चित करता है। वह मृत्यु के पाश को शरीर त्याग से पूर्व ही छोड़ कर शोक रहित हुआ मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग लोक में आनन्द पाता है।

एष तेऽग्निर्नचिकेत: स्वग्यों यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवश्रयंति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्य ॥१८॥

हे नचिकेतः ! यह स्वर्ग का साधन पूर्वोक्त अग्निहोत्रादि यज्ञ का विधान तुम्हारे लिये कहा गया। जिसको तुमने दूसरे वर से मांगा था। तुम्हारे ही नाम से लोग इस अग्नि को जानेंगे - हे नचिकेत: ! अब तुम तीसरा वर मांगो।

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येपुस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्ययाहं वराणामेष वरस्तृतीय: ॥२०॥

हे यमराज ! मनुष्य के मर जाने पर कोई तो कहते हैं कि शरीरस्थ जीवात्मा नित्य है और कोई कहते हैं कि आत्मा नहीं है। आप से उपदेश प्राप्त करके मैं जिस प्रकार इस आत्म विद्या को जान सकूँ, वरों में तीसरा मेरा अभीष्ट वर यही है। यही दीजिये।

देवैरत्रापि विचिकित्सित पुरा न हि सुविज्ञेयभणुरेष धर्म:।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीध्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२१॥

यमराज ने सोचा कि अनधिकारी के प्रति आत्मतत्व का उपदेश करना हानिकर होता है अतएव पहले पात्र- परीक्षा की आवश्यकता है ऐसा विचारकर यमराज ने इस तत्व की कठिनता का वर्णन करके नचिकेता को टालना चाहा और कहा-

हे नचिकेत ! इस विषय में पहले देवताओं ने भी संदेह किया था परंतु उनकी भी समझ में नहीं आया, क्योंकि यह विषय बड़ा सूक्ष्म है। सहज ही समझ में आने वाला नहीं है। हे नचिकेतः ! इसको छोड़

कर तुम दूसरा वर मांग लो। मुझे ऋणी के तुल्य मत दबाओ, इस वर को मेरे प्रति छोड़ दो।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य करश्चित्
।।२२॥

नचिकेता बोले-

हे यमराज ! जब विद्वान् देवों ने भी इस विषय में पहले संशय किया है, और आप भी इसको सुगम नहीं बताते, तब निश्चय ही यह वर अति कठिन है और इस वर का उपदेश देने वाला मुझ को आपके समक्ष कोई और मिल भी नहीं सकता और न ही इसके समान दूसरा कोई वर हो सकता है। इसलिए मेरी समझ में इसके समान दूसरा कोई वर नहीं है।

विषय की कठिनता से नचिकेता घबराया नहीं, वह अपने निश्चय पर ज्यों का त्यों दृढ़ रहा। इस एक परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो गया। अब यमराज दूसरी परीक्षा के रूप में उसके सामने विभिन्न प्रकार के प्रलोभन रखने की बात सोचकर उससे कहने लगे:-

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्य बल-पद्य-हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥२३॥

हे नचिकेतः ! तुम सौ सौ वर्ष की अवस्था वाले पुत्र और प्रपौत्रों को मांग लो, बहुत से पशु, हाथी, सोना, घोड़े वर में ले लो, पृथ्वी के बड़े विस्तार वाले साम्राज्य को मांग लो और स्वयं भी जितना चाहो जीवन प्राप्त कर लो।

एतजुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्य वित्त चिरजीविका च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्लमेधि कामाना त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥

और इसके समान यदि किसी वर को समझते हो तो वह माँग लो। धन, संपत्ति और अनंतकाल तक जीने के साधनों को मांग लो। हे नचिकेतः ! तुम इस पृथ्वीलोक में बड़े भारी सम्राट बन जाओ। मैं तुम्हे सभी लौकिक उपभोग प्रदान करता हूँ।

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामांश्छन्दत: प्रार्थयस्व।
इमा रामा: सरथा: सतूर्या न हीदृशा लम्मनीया मनुष्यै:।
आभिर्मत्यत्ताभि: परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी:॥२५॥

इतने पर भी नचिकेता अपने निश्चय पर अटल रहा तब स्वर्ग के दैवी भोगों का प्रलोभन देते हुए यमराज ने कहा—

मनुष्यों में जो जो कामनाएं दुर्लभ हैं, उन संपूर्ण कामनाओं को इच्छानुसार मांग लो। ये रथों पर चढ़ी हुई जिनके साथ बाजे बज रहे हैं, ऐसी रमण के योग्य स्त्रियां मैं तुमको देता हूँ। ऐसी स्त्रियां मनुष्यों को प्राप्त नहीं हो सकतीं। मेरे द्वारा दी हुई इन स्त्रियों से तुम अपनी

सेवा कराओ। पर हे नचिकेता ! मरने के बाद आत्मा का क्या होता है इस बात को मत पूछो।

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतप्लवेंन्द्रियाणां जरयन्ति तेज:।
अपि सर्व जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥२६॥

नचिकेता बोले:

हे यमराज! मनुष्य के सुख भोग तो क्षणभंगुर अनित्य हैं। ये ही इन्द्रियों के सारे तेज को नष्ट कर डालते हैं । इसके सिवा मनुष्य का सारा जीवन अल्प है, इसलिये यह हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहन और ये अप्सराओं के नाच-गान आपके ही पास रहे। मुझे इन नाशवान् पदार्थों की इच्छा नहीं है।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लक्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत-त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीय: स एव ॥२७॥

हे यमराज ! मनुष्य धन से तृप्त नहीं हो सकता, और अब जब आपके दर्शन हो गए हैं तब धन की क्या कमी रही, और जब तक आप मेरे रक्षक बने रहेंगे तब तक मेरा जीवन भी रहेगा, (इन तुच्छ बातों को मैं क्या माँगू)। बस वर तो मुझे वही मांगना है जो पहले मांग चुका हूँ।

अजीर्यतामृतानामुपेत्य जीर्यन् मर्त्य: क्वधःस्थ: प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२७॥

यह मनुष्य जीर्ण होने वाला और मरणधर्मा है। इस तत्व को भलीभांति समझने वाला मनुष्यलोक का निवासी कौन ऐसा मनुष्य है जो कि बुढ़ापे से रहित न मरने वाले आप सदृश महात्माओं का संग पाकर भी स्त्रियों के सौदर्य, क्रीड़ा और आमोद, प्रमोद का बार-बार चिंतन करता हुआ बहुत काल तक जीवित रहने में उत्सुकता रखेगा?

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योध्यं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥२६॥

हे मृत्यो! हे यमराज! जिस आत्मज्ञान में लोग यह सन्देह करते हैं कि वह है या नहीं, और जो अनन्त मोक्ष दशा में विचार है, उस विवेक को आप मेरे लिये कहिये। यह आत्मा मरने के बाद रहता है या नहीं उसमें जो निर्णय है वह आप मुझे बतलाए। जो यह अत्यंत गूढ़ता को प्राप्त हुआ वर है इससे दूसरा वर नचिकेता नहीं मांगता।

॥ इति प्रथमाध्याये प्रथमा वल्ली॥

॥ प्रथमा वल्ली समाप्त॥

॥ अथ द्वितीया वल्ली ॥

॥ द्वितीय वल्ली ॥

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥१॥

नचिकेता के आत्मानुराग को देख कर यमराज बोले :

हे नचिकेतः ! श्रेयमार्ग अन्य है और प्रेय अर्थात् प्रिय लगने वाला मार्ग अन्य है। ये दोनों मार्ग भिन्न भिन्न प्रयोजन वाले मनुष्य को वासना रूप रस्सियों से बांधते हैं। इनमें से जो मनुष्य श्रेयमार्ग को ग्रहण करता है उसका कल्याण होता है। और जो प्रेय मार्ग अंगीकार करता है वह अपने मार्ग से भ्रष्ट होकर गिर जाता है अर्थात यथार्थ लाभ से वंचित रह जाता है ।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥२॥

श्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग दोनों हो मनुष्य को प्राप्त होते हैं। धीर पुरुष उन दोनों का विवेचन करते हैं तथा उन दोनों के स्वरूप पर भलीभांति विचार करके उनको पृथक-पृथक समझ कर निश्चय ही प्रेय मार्ग को छोड़ कर श्रेय मार्ग का ही आश्रय लेते हैं। परंतु मन्द बुद्धि मनुष्य केवल धनादि पदार्थों को ही सुख समझ कर प्रेयमार्ग को स्वीकार करते हैं।

(श्रेय मार्ग से आशय उसे मार्ग से है जिससे मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त करता है, और विषय भोग के मार्ग का नाम प्रेय है, उन दोनों का विवेकी मनुष्य विवेचन कर प्रेयमार्ग को त्याग कर श्रेय को ही स्वीकार करते हैं। किन्तु मूर्ख मनुष्य विषय भोग को ही सुख समझते हैं इसलिये प्रेय मार्ग ही उन्हें प्रिय लगता है।)

स त्वं प्रियान् प्रियरूपाक्य कामानभिध्यायन्नचिकेतोइत्यस्राक्षी:।
नैतान् सृंकां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मंजन्ति बहवो मनुष्याः ॥३॥

हे नचिकेतः! प्रिय लगने वाले और अत्यंत सुंदर रूप वाले इस लोक और परलोक के समस्त भोगों को भलीभांति सोच-समझकर तुमने छोड़ दिया। तुम इस वित्तमई बेडियों में नहीं फंसे जिसमें बहुत से मनुष्य फंस जाते हैं।

दूरमेते विपरीते विषची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सित नचिकेतसं मन्ये नत्वा कामा बहवो लोलुपन्तः॥४॥

विद्वानों ने विद्या और अविद्या दोनों को एक दूसरे से भिन्न मार्ग में ले जाने वाली जाना है। मैं तुम्हे विद्या का अभिलाषी मानता हूं क्योंकि तुम्हें बहुत सी कामनाएं नहीं लुभा सकीं।

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना: स्वयं धीरा: यण्डितम्मन्यमाना:।
दन्द्रम्यमाणा: परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा: ॥५॥

अविद्या में फंसे रहने वाले, अपने को बुद्धिमान और विद्वान मानने वाले मूर्ख जन, अनेकों योनियों में चारों ओर भटकते हुए ठीक वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं जैसे अंधे मनुष्य के द्वारा मार्ग दिखाए जाने वाले अंधे अपने लक्ष्य तक न पहुंचकर इधर-उधर भटकते रहते हैं।

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्त वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनवेशमापद्यते मे ॥६॥

धन ऐश्वर्य आदि के मोह से मूढ़ तथा कल्याणाचरण में प्रमाद करने वाले बाल अर्थात् मूर्ख मनुष्यों को परमार्थ का साधन तप आचरण आदि अच्छा नहीं लगता। यही लोक है- परलोक कुछ नहीं है ऐसा मानने वाले मनुष्य बार बार मेरे अर्थात् मृत्यु के वश में पड़ते हैं।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ ।।७।।

आत्मा अथवा परमात्मा के विषय में सुनने का अवसर भी बहुतों को नहीं मिलता। बहुत से लोग सुनते हुए भी जिसको जान नहीं पाते। ऐसे आत्मा और परमात्मा के वर्णन करने वाला कोई आश्चर्य रूप ही होता है और कोई कुशल पुरुष ही इसे प्राप्त करता है और कुशल गुरु द्वारा उपदेश दिया हुआ इसका ज्ञाता भी कोई आश्चर्य रूप ही होता है।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥८॥

अल्पबुद्धि, ज्ञानहीन, संसारी मनुष्य तुम्हें आत्मतत्व के विषय में बता नहीं सकता। उसके कथन किये जाने पर भी तुम वस्तुत: आत्म तत्व को जान नहीं सकते, क्योंकि उस परमतत्व का बहुविध रूपों में चिन्तन किया जाता है। तथा अन्य किसी के द्वारा आत्मा या ब्रह्म तत्व के विषय मे कथन के बिना तुम उस तक पहुँचने का मार्ग भी नहीं पा सकोगे। क्योंकि यह आत्मा या ब्रह्म सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और तर्क करने के योग्य नहीं है।

प्रेष्ठ त्वं याम् आप एषा मतिः तर्केण न आपनेया भवति ।
अन्येन प्रोक्ता सुज्ञानाय एव भवति ।
नचिकेतः सत्यधृतिः असि बत नः त्वादृक् प्रष्टा भूयात् ॥९॥

यह बुद्धि सूखे तर्कवाद से नष्ट नहीं करनी चाहिये। हे प्रियतम ! तार्किकों से भिन्न वेदज्ञ पुरुष से उपदेश में प्राप्त हुई यह बुद्धि श्रेष्ठ ज्ञान के लिये होती है जिस को तुमने प्राप्त कर लिया है। तुम निश्चय यही निश्चल धैर्यवान् हो; मुझे तुम्हारे जैसे प्रश्नकर्ता सदैव मिलते रहें।

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥
॥१०॥

यम पुनः बोले:

हे नचिकेत: ! धन ऐश्वर्य सब अनित्य हैं यह मैं जानता हूं । निश्चय ही अध्रुव नाशवान् धन आदि पदार्थों से वह ध्रुव अर्थात् अचल पद प्राप्त

नहीं किया जा सकता, इसी लिये मैंने नाचिकेत नामक यज्ञ का विधान तुम्हे बताया है, अनित्य शरीरादि पदार्थों से मैं नित्य परब्रह्म को प्राप्त कर चुका हूँ।

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोमं अहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो
नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः॥११॥

हे नचिकेतः ! तुमने कामदेव सम्बन्धी सुख को, जगत् की स्थिति के कारण को, कर्म के अनन्त फल को, अभय के दूसरे पार को, स्तुति करने योग्य महिमा इत्यादि बड़ी प्रतिष्ठा को अपने अधिकार मे आया देख कर भी, विवेक एवं धैर्य में दृढ रहकर, ज्ञानरूपी नेत्रों से इन सब को दुःख रूप जान कर इन सबका परित्याग कर दिया है।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥१२॥

ध्यानशील विद्वान्, अध्यात्म योग की प्राप्ति से, कठिनता से दर्शनीय, अत्यन्त गुप्त, सर्वत्र व्याप्त, बुद्धि में स्थिर सब के साक्षीभूत, सनातन ज्ञान स्वरूप देव को जान कर हर्ष और शोक को छोड़ देते हैं।

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥१३॥

मरणधर्मा मनुष्य आचार्य के उपदेश से ब्रह्म के वर्णन को सुन कर और मन से भले प्रकार जानकर और इस सूक्ष्मतम धर्म भाव को सुने हुए के अनुसार अपनी आत्मा में अनुभव करके निश्चय उस आनन्दमय परमात्मा को पाकर प्रसन्न हो जाते हैं, मैं नचिकेता के मानस धाम को खुला हुआ मानता हूँ।

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ ॥१४॥

यमराज की अपने ऊपर कृपा देख कर नचिकेता बोले:

हे गुरुदेव! धर्म से पृथक, अधर्म से पृथक, सूक्षम और स्थूल रूप प्रत्यक्ष संसार से पृथक् तथा भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनों कालों की गति से भी पृथक्, आप जिस को जानते हैं उस को मुझे बताइये।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्
॥१५॥

यमराज बोले:

हे नचिकेतः ! सारे वेद जिस पद की व्याख्या करते हैं और सारे तप जिस का वर्णन करते हैं और जिस की इच्छा करते हुए विद्वान् ब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं, उस पद का मैं संक्षेप से वर्णन करता हूँ। वह 'ओ३म्' है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६॥

निश्चय यही ओ३म् ब्रह्म है, यही सब से उत्तम अक्षर है। इसी अविनाशी ब्रह्म को जान कर जो मनुष्य जो कुछ चाहता है उसको वह अवश्य प्राप्त होता है।

एतदालम्बनँ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

ब्रह्म ज्ञान के साधनों में इस ओ३म् का आलम्बन ही श्रेष्ठ है। यही परम आलम्बन है, इस आलम्बन को जान कर ज्ञातव्य ब्रह्म के बीच महिमा को प्राप्त होता है।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥

यह ज्ञान स्वरूप आत्मा न उत्पन्न होता है और न मरता है, और न यह किसी से उत्पन्न हुआ और न इस से कुछ उत्पन्न होता है। अतः यह आत्मा जन्म रहित, नित्य, अविनाशी और अनादि है, इसका शरीर के नाश होने पर भी नाश नहीं होता।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते ॥१९॥

यदि शरीर को मारने वाला मनुष्य यह समझता है कि मैं आत्मा को मारता हूँ और मरने वाला समझता है कि मैं मर गया हूँ तो वे दोनों ही आत्मा को नहीं जानते। न तो यह आत्मा मारता है और न यह मरता है।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥२०॥

अब आत्मा के साथ ही "यम" परमात्मा का वर्णन करते हैं:

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से महानतम, वह परमात्मा इस मनुष्य देह के भीतर हृदय में छिपा हुआ है। उस ईश्वर की महिमा को, भगवान की कृपा से, विषयों में न फंसने वाले, शोक रहित मनुष्य ही जान सकते हैं।

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१॥

जो परमात्मा व्यापक होने से अचल होने पर भी दूर से दूर स्थानों में पहले ही मौजूद है, और जो जीवात्मा तमोगुण से आच्छादित होने पर भी मन की प्रेरणा से सब जगह पहुँच जाता है उस आनन्द स्वरूप और लौकिक आनंद से रहित परमात्मा तथा हर्ष और शोक से युक्त जीवात्मा को मेरे सिवाय और कौन जान सकता है। मेरे जैसे सन्त लोग ही परमात्मा और जीवात्मा को जान सकते हैं, अन्य साधारण बुद्धि के मनुष्य क्या जान सकते हैं।

अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२॥

वह ईश्वर शरीरों में बिना शरीर के विद्यमान है, और चलायमान चीज़ों में स्थिर है ऐसे महान् व्यापक परमात्मा को जान कर धीर जन शोक रहित हो जाते हैं।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳ स्वाम् ॥२३॥

वह परमात्मा पढ़ाने या उपदेश देने से नहीं मिल सकता, न वह बुद्धि से प्राप्त होता है और न उसे बहुत से शास्त्रों के पाठ से प्राप्त किया जा सकता हैं। परन्तु जिस को वह स्वीकार कर लेता है, उसी से वह प्राप्त होता है। वह प्रभु उसी पर अपना स्वरूप प्रकाशित करता है।

नाविरतो दुश्चरितामाशान्तो ना समाहितः ।
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४॥

जो मनुष्य दुराचार से नहीं हटा, अशान्त है और जिस की बुद्धि स्थिर नहीं हैं और जिसका मन चञ्चल है। वह केवल तर्क से उस भगवान् को नहीं पा सकता।

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५॥

जिस परब्रह्म में ब्राह्मण और क्षत्रियादि सब प्रलय समय में लीन हो जाते हैं, जो मौत के भी मारने वाला है उस परमात्म देव के यथार्थ स्वरूप को कौन जान सकता है अर्थात् उसके स्वरूप को मुमुक्षु लोग ही जानते हैं साधारण लोग नहीं जानते ।

॥ इति प्रथमाध्याये द्वितीया वल्ली ॥

॥ द्वितीया वल्ली समाप्त ॥

॥ अथ तृतीया वल्ली॥

॥तृतीय वल्ली॥

इस वल्ली में यमराज जीवात्मा और परमात्मा दोनों का वर्णन करते हैं।

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥१॥

अपने किए हुए कर्म के फल को भोगने वाले और अपनी शक्ति से जीवात्मा को फल भुगाने वाले, बुद्धि के गुप्त प्रदेश में रहने वाले, और मोक्ष धाम में सत्य स्वरूप वाले जीवात्मा और परमात्मा को ब्रह्म ज्ञानी लोग, गृहस्थी और वानप्रस्थ लोग छाया और प्रकाश के समान अलग अलग कहते हैं।

अर्थ यह है कि जीवात्मा के रूप मे परमात्मा ही गुप्त रूप से शरीर में विद्यमान हैं और दोनों ही मोक्षावस्था में सत्य स्वरूप हैं यानी ईश्वर नित्य मुक्त है और जीव मोक्ष प्राप्त करता है इस लिये ब्रह्म ज्ञानी इन दोनों को भिन्न ही मानते हैं।

पञ्चाग्नि शब्द से आशय उन गृहस्थों से है, जो माता, पिता, अतिथि, गुरू और परमात्मा इन पाचों की परिचर्या करते हैं:

'पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः। माता तिथिपिता चव गुरुरात्मा च पञ्चमः।।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतँ शकेमहि ॥२॥

जो परमात्मा यज्ञ, भजन, करने वाले मनुष्यों के लिये संसार को पार करने वाले पुल के समान है। वह विनाश रहित परम ब्रह्म है जिसमें भय का लेश नहीं है, और संसार के दुःखों से तरने की इच्छा करने वालों का जो पार है, उस ईश्वर को हम जान सकें।

आत्मानँ रथितं विद्धि शरीरँ रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३॥

यमराज बोले:

हे नचिकेतः! तुम इस जीवात्मा को रथ का स्वामी समझो, और शरीर को रथ समझो, बुद्धि को सारथि और मन को लगाम की रस्सी समझो।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥४॥

इस शरीर के अन्दर जो इन्द्रियां हैं उन्ही को घोड़े समझो, और इन्द्रियों के जो विषयों को उन घोड़ों के मार्ग। मन और इन्द्रियों से युक्त आत्मा को ही विद्वान् लोग भोक्ता बताते हैं।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥५॥

परन्तु जो मनुष्य अज्ञानी हैं, जिनका मन स्थिर नहीं है, उनकी इन्द्रियां उनके वश में नहीं रहतीं। जैसे दुष्ट घोड़े सारथी के वश में नहीं रहते।

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥६॥

परन्तु जो मनुष्य बुद्धिमान हैं और जिनका मन वश में है उनकी इन्द्रियां भी उनके वश में उसी प्रकार रहती हैं जैसे उत्तम घोड़े सारथी के वश में रहते हैं।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥७॥

जो मनुष्य बुद्धिमान नहीं है, जिसका मन वश में नहीं रहता और जो छल कपट आदि दोषों से युक्त होने से अपवित्र रहता है, वह उस ब्रह्म के परम पद को नहीं प्राप्त कर पाता और सदा जन्म मरण के चक्र में घूमता रहता है।

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥८॥

परन्तु जो मनुष्य ज्ञानी है, शुद्ध मन वाला है, और सदा पवित्र आचरण करता है, वह प्रभु के परम पद को प्राप्त कर लेता है। जिससे वह पुन: दुःख को प्राप्त नहीं होता और न ही संसार में दुःख रूप जन्म मरण को प्राप्त होता है।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९॥

जिस मनुष्य की बुद्धि उसकी सारथी है और मन लगाम है यानी वश में है वह अपने मार्ग का पार पा जाता है जो कि उस व्यापक ब्रह्म का सर्वोत्तम स्थान है।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥१०॥

अब यमराज, स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रिय आदि पदार्थों के क्रम का वर्णन करते हैं:

इन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियों के रूप आदि विषय सूक्ष्म है और विषयों से मन सूक्ष्म है, मनसे बुद्धि अधिक सूक्ष्म है, और बुद्धि से महत्तत्व सूक्ष्मता है, महत् तत्व से अव्यक्त प्रकृति अति सूक्ष्म है और उससे पूर्ण परमात्मा सूक्ष्मतम है, परमात्मा से सूक्ष्म संसार में कुछ भी नहीं

है। वही सीमा हैं और वही परम गति हैं उससे आगे किसी की गति नहीं है।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११॥

मन से परे सूक्ष्म सत, रज और तम गुण वाली प्रकृति से जीवात्मा और परमात्मा है परमात्मा से सूक्ष्म कुछ भी नहीं है वह अन्तिम मार्ग ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। वह सबसे सूक्ष्म हैं उनके पश्चात् न तो किसी का ज्ञान होता है और न उनसे आगे कहीं जाया जा सकता है।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥१२॥

यह सर्व नियन्ता परमात्मा जो समस्त प्राणियों के ह्रदय में छिपा हुआ है। मलिन बुद्धि वाले मनुष्यों से नहीं जाना जाता, किन्तु तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा सूक्ष्म दर्शी लोग उसे देख सकते हैं।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१३॥

सूक्ष्म बुद्धि से वह किस प्रकार जाने जाते हैं, यमराज आगे इसका वर्णन करते हैं।

विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह अपने मन और वाणी को विषयों से रोके और फिर उनको अपनी बुद्धि में स्थिर करके उस बुद्धि को

महान् आत्मा में स्थित करे और आत्मा को शान्त परमात्मा के साथ जोड़े।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४॥

यमराज ने कहा:

हे मनुष्यो ! उस परमात्मा के जानने के लिये अविद्या की नींद से उठ जाओ, जागो, और श्रेष्ठ आर्य जनों के सत् सङ्ग से ईश्वर को समझो, हे मनुष्यो ! यह रास्ता सुगम नहीं है, तत्व दर्शी विद्वान तलवार की तेज धार के समान, लांघने में कठिन, इस मार्ग को भी दुर्गम बताते हैं।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥ १५॥

ब्रह्म का कोई विषय नहीं है, वह स्पर्श रहित है, रूप और विकार से भी रहित है, अनादि अनन्त है, प्रकृति से भी सूक्ष्म है, निश्चल है, उस को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है, और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तँ सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६॥

यमराज द्वारा वर्णित, इस नचिकेता नामक सनातन कथा को कह कर और सुन कर मेधावी मनुष्य ब्रह्म धाम में महिमा को प्राप्त होता है ।

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते ।
तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७॥

जो विद्वान मनुष्य इस परम रहस्य भेद को ब्रह्म सभा में सुनाता है अथवा पवित्र होकर अतिथियों के सत्कार के समय सुनाता है तो इस कथा का फल अनन्त हो जाता है। इस कथा के सुनने से अनन्त पुरुषों को फल मिलता है।

॥ इति प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली ॥

॥ तृतीय वल्ली समाप्त॥

॥द्वितीयाध्याये : द्वितीय अध्याय॥

॥अथ प्रथमा वल्ली॥

॥प्रथमा वल्ली॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १॥

स्वयम्भू भगवान ने इन्द्रियों को विषयों की तरफ जाने वाली बनाया है इसलिये मनुष्य बाहर के विषयों को तो देखता है किन्तु आत्मा को नहीं देख पाता , कोई एक विरला ध्यानी पुरुष ही मोक्ष की इच्छा से अन्तःकरण में रहने वाले परमात्मा को ध्यान द्वारा देखता है ।

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २॥

मूर्ख मनुष्य बाहर के विषय भोगों में ही लगे रहते हैं, ऐसे लोग मृत्यु के विशाल जाल में फँस जाते हैं। परन्तु विद्वान् लोग मोक्ष पद को निश्चल समझ कर अनित्य विषय सुख, की याचना कभी नहीं करते, सदैव मोक्ष धाम की ही इच्छा करते हैं।

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ३॥

क्योंकि उस विज्ञान स्वरूप परमात्मा के रहने से ही मनुष्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धों को और मैथुन से होने वाले सुखों के अनुभवों को जानता है, इन सब के जान लेने से फिर बाक़ी क्या रहा, अर्थात् कुछ भी नहीं, इसलिये हे नचिकेतः! जिस के सम्बन्ध में तूने पूछा था यह वही ज्ञान स्वरूप परब्रह्म है।

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ ४॥

मनुष्य जिस की सत्ता से जागरित और स्वप्न अवस्थाओं का अनुभव करता है, उस महान्, व्यापक ईश्वर को जान कर धीर पुरुष कभी शोक नहीं करता ।

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥५॥

जो मनुष्य कर्मों के फल भोगने वाले प्राणों के धारण कर्ता आत्मा को जानता है और उसके अति निकट रहने वाले भूत और भविष्यत् काल के स्वामी परमात्मा को भी जान लेता है। वह ज्ञानी पुरुष निन्दा को कभी प्राप्त नहीं होता। हे नचिकेतः ! जिनके विषय में तुमने पूछा था यह वही परमात्मा है।

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वै तत् ॥६॥

जो परमेश्वर तप अर्थात् सङ्कल्प से और प्राणों से भी। पूर्व विद्यमान था, उस अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर रहने वाले पञ्च भूतों के साथ व्याप्त परमेश्वर को जो मनुष्य जान लेता है और सदा उसी के ध्यान में मग्न रहता है। वही यह ब्रह्म है जिसके विषय में तुमने पूछा था।

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वै तत् ॥ ७॥

जो दिव्य ज्ञान प्रकाश स्वरूप वाली अखण्डनीया बुद्धि शक्ति है, जिस से भगवान के स्वरूप को जाना जा सकता है, वह प्राणायाम के अभ्यास से ही प्राप्त होती है। वह भौतिक शरीर के साथ ही उत्पन्न होती है। उस अन्तःकरण में रहने वाली शक्ति को जो मनुष्य जान पाता है वही उस ब्रह्म के विषय को जान सकता है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वै तत् ॥८॥

वह परमेश्वर इस संसार में उसी प्रकार से गुप्त रूप से व्याप्त है जैसे अरणियों में अग्नि छिपी रहती है। वह तेजोमय ब्रह्म अप्रमादी और ध्यानी मनुष्यों से सदा स्तुति करने योग्य है। निश्चय ही यही वह परमात्मा है।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥९॥

जिन परमेश्वर के प्रबल प्रताप से सूर्य उदय होता है, और प्रलय के समय जिन में अस्त हो जाता है, सारे दिव्य पदार्थ जिन के आधार से खड़े हैं और कोई भी पदार्थ जिन के नियम के विरुद्ध नहीं चल सकता, उन्ही को ब्रह्म जानना चाहिये, जिनके विषय में तुमने पूछा था।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १०॥

जो ईश्वर यहाँ है वही सूर्यादि लोक में भी है, जो सूर्यादि लोक में है वही इश्वर यहाँ भी है। जो मनुष्य उस एक अखण्ड परमात्मा को अनेक मानता है और जो यह समझता है की ईश्वर अनेक हैं, वह जन्म मरण के बन्धन में ही उलझा रहता है। अर्थात उसको कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११॥

वह ब्रह्म केवल मन अर्थात् सूक्ष्म बुद्धि से ही जाना जा सकता है। उस ब्रह्म में अनेकत्व है ही नहीं अर्थात वह अखण्ड एक रस है। जो मनुष्य उस एक अखण्ड परमात्मा को अनेक मानता है, वह सदा मृत्यु के मुख में ही पड़ा रहता है।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥१२॥

वह सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा शरीर के हृदयस्थान में अंगुष्ठमात्र स्थान में लिङ्ग रूप आत्मा के रूप में विराज मान है। योगी जन उसकी प्राप्ति के लिये इसी स्थान पर ध्यान लगाते हैं वह ईश्वर भूत और भविष्यत सबका स्वामी है, जो मनुष्य उसको वहां जान लेता है वह फिर ग्लानि को प्राप्त नहीं होता, हे नचिकेतः ! यह ही वह ब्रह्म है, जिनके विषय में तुमने पूछा था।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः । एतद्वै तत् ॥ १३॥

हृदय स्थान में विशेष रूपसे जानने के योग्य वह व्यापक प्रभु धुंए रहित प्रकाश के समान निर्मल है। वही भूत, भविष्यत् का स्वामी है, वही आज मालिक है वही कल रहेगा, यही वह प्रभु है जिनको जानने की जिज्ञासा तुमने की थी।

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४॥

जैसे ऊंचे नीचे स्थानों में बरसा हुआ जल, पर्वत के निम्न भाग में ही पहुँच जाता है। इसी बरह गुणी से गुणों को भिन्न देखने वाला मनुष्य उन गुणों के पीछे ही चल पड़ता है।

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५॥

हे गौतम वंशी नचिकेता ! जैसे शुद्ध जल, शुद्ध जल में मिलकर शुद्ध ही बना रहता है, ऐसे ही ज्ञानी मनुष्य की आत्मा पवित्र परमात्मा से मिल कर पवित्र और निर्मल हो जाती है ।

॥ इति द्वितीयाध्याये प्रथमा वल्ली ॥

॥ प्रथम वल्ली समाप्त ॥

॥द्वितीया वल्ली॥

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥ १॥

शुद्ध अन्तःकरण वाले अजन्मा आत्मा का यह शरीर ग्यारह द्वारों[1] वाला है उस शरीर से यथा योग्य काम लेने वाला आत्मा शोक नहीं करता और उसी शरीर से विमुक्त होने से मनुष्य मोक्ष लाभ करता है - यह वही आत्मा है जिसके विषय में तुमने जिज्ञासा व्यक्त की थी।

हँसः शुचिषद्वसुरान्तरिक्षसद्होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसद् अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्
॥२॥

जो विशुद्ध परमधाम मे रहने वाला हंस अर्थात स्वयं प्रकाश पुरूषोत्तम है वही अंतरिक्ष में निवास करने वाला वसु है। शरीर रुपी घरों मे रहने के कारण वह अथिति है। यज्ञ की वेदी पर स्थापित अग्निस्वरूपा तथा उसमें आहुति डालने वाला 'होता' है। समस्त मनुष्यों मे रहने वाला, श्रेष्ठ देवताओं मे रहने वाला है। वही सत्य में रहने वाला और आकाश में रहने वाला है। जल, पृथ्वी, पर्वतों में अनेक रूप से प्रकट होने वाला, वही परम सत्य है।

[1] 11 द्वार इस प्रकार हैं – दो आँखें, दो कान, दो नाक, एक मुंह, एक गुदा एक उपस्थ, एक नाभि, १ मूर्धा

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३॥

जब वही जीवात्मा योगाभ्यास में संलग्न होता है तब प्राण वायु को वह ऊपर की ओर रोकता है और अधोद्वार में चलने वाली अपान वायु को पेट में फेंकता है। उस समय नित्य प्रशस्त जीवात्मा की सारी इन्द्रियाँ सेवन करती हैं, अर्थात् जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रजा राजा की आज्ञा का पालन करती हैं, उसी प्रकार योगाभ्यास – प्राणायम करने वाले मनुष्य की समस्त इन्द्रियां उसके वश में रहती हैं।

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ४॥

शरीर के स्वामी शरीर में रहने वाली इस आत्मा के शरीर से निकल जाने पर और शरीर को छोड़ देने पर शरीर में पीछे क्या रह जाता है, कुछ भी नहीं, अत: जिसके निकल जाने पर शरीर में कुछ भी शेष नहीं रहता, हे नचिकेता ! वही आत्मा है ।

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५॥

कोई भी मनुष्य न तो प्राण से जीता है और न अपान, से अपितु मनुष्य उससे जीता है जिसके आश्रय से ये दोनों शरीर में रहते हैं और वह आत्मा है।

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६॥

हे गौतम नचिकेता ! अब मैं तुम्हे एक और गुप्त भेद सनातन ब्रह्म का बताऊंगा। और एक यह बताऊँगा कि आत्मा का मरने के बाद क्या होता है। अत: तुम उसे ध्यान पूर्वक सुनो।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७॥

यमराज बोले:

हे नचिकेता ! बहुत से मनुष्य तो अपने अपने कर्म और अपने अपने ज्ञान के अनुसार मनुष्यादि की योनियों में जाते हैं और जो लोग अति निकष्ट पाप करने वाले हैं वे वृक्षादि स्थावर योनियों को प्राप्त होते हैं।

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ ८॥

परन्तु यह जो अन्तर्यामी, प्रत्येक कामना की पूर्ति के लिये सब पदार्थों का निर्माण कर्ता, और प्रमाद आलस्य रूपी निद्रा में सोते हुए जीवों में जागता रहता है, वही अमृत रूप शुद्ध ब्रह्म है उसी के आश्रित सारे लोक ठहरे हुए हैं, उसके नियमों का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, यह वही परमात्मा है जिसके सम्बन्ध में तुमने प्रश्न किया था।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९॥

जैसे अग्नि विद्युत् रूप से संसार के सब पदार्थों में प्रविष्ट होकर उस पदार्थ के रूप में ही दिखाई पड़ती है, इसी प्रकार वह एक, सबका अन्तरात्मा ईश्वर सब पदार्थों के अन्दर और बाहर विद्यमान मान है। जिस प्रकार विद्युत् सभी पदार्थों में रहते हुए भी सबसे पृथक् है, इसी प्रकार ईश्वर सभी पदार्थों विद्यमान होते हुए भी सबसे पृथक् है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १०॥

जैसे वायु संसार के सब पदार्थों में प्रविष्ट होकर उन सभी पदार्थों का रूप धारण कर लेता है, इसी प्रकार सबका साक्षी एक ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान होते हुए भी उनसे पृथक है।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११॥

जैसे सारे संसार को दिखाने वाला भी सूर्य, आँखों के दोषों से लिप्त नहीं होता, इसी तरह सबको साक्षी एक ईश्वर बाहर के लोक दुःख से लिप्त नहीं होती–सूर्य यद्यपि लोक लोका न्सरों को प्रकाशित करता है परन्तु लोक के दोष उसमें नहीं आते ऐसे ही ईश्वर भी सब जगत् में व्यापक है परन्तु उसमें जगत् के

दोष नहीं आते ।।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

जो परमेश्वर एक सबका नियन्ता, और सारे चराचर जगत् का साक्षी है वही एक प्रकृति को बहुत प्रकार से रचता है, अर्थात् उसी की स्वाभाविक इच्छा से प्रकृति में अनेक परिणाम होते हैं। जो बुद्धिमान् भक्त लोग उस जगदीश्वर को अपनी आत्मा में व्याप्त देखते हैं उन्हीं को अविनाशी सुख मिलता है दूसरों को नहीं ।

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्
॥१३॥

जो प्रभु अनित्य पदार्थों में नित्य अविनाशी है, और जो ज्ञानियों के भी ज्ञान का दाता है, जो चराचर वस्तुओं के बीच में एक अखण्ड है और अनन्त जीवों के कर्म फलों का देने वाला है। उस परमेश्वर को जो ज्ञानी जन अपनी आत्मा में देखते हैं उन्हीं को सदा रहने वाली शान्ति मिलती है दूसरों को नहीं।

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४॥

यह सुनकर नचिकेता बोले:

हे आचार्य ! ब्रह्म वेशा लोग जिसे प्रत्यक्ष से उंगली द्वारा नहीं दिखा सकते कि वह ब्रह्म ऐसा है और फिर भी उसे अनिर्वचनीय परम सुख मानते हैं तो मैं ऐसे ब्रह्म को कैसे जानूँ। क्या वह प्रकाश का कारण है अथवा प्रदीप के तुल्य स्वयं प्रकाशक है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५॥

यमराज ने कहा:

हे नचिकेता ! उस परमेश्वर को सूर्य, चन्द्रमा, तारे और बिजलियाँ प्रकाशित नहीं कर सकते, तब भला यह अग्नि उन्हें क्या प्रकाशित करेगा, वास्तव में उन्ही के चमकने पर सारा विश्व चमकता है, उन्ही की ज्योति से यह सारा जगत् दीप्त हो रहा है, वह तो प्रकाश स्वरूप है। सभी का प्रकाश वही है ।

॥ इति द्वितीयाध्याये द्वितीया वल्ली ॥

॥ द्वितीय वल्ली समाप्त ॥

॥तृतीया वल्ली॥

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ १॥

जिस की जड़ ऊपर को और जिस की शाखाएं नीचे को हैं यह मनुष्य का शरीर अश्वथ के वृक्ष के समान स्वरूप से अनित्य किन्तु प्रवाह से अनादि चला रहा है, जो इसके मूल का अथवा प्रकृति का भी कारण है वही शुद्ध ब्रह्म है, वही अमृत आनन्दमय कहा जाता है उसी में सब पृथिव्यादि लोक थमे हुए। हैं, उसको कोई नहीं लांघ सकता, यही भगवान् जानने के योग्य हैं।

यदिदं किं च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २॥

प्रलयान्तर में यह सारा जगत् परमेश्वर से ही उत्पन्न होता है। और सभी के प्राण स्वरूप ब्रह्म के आश्रय से ही इस में क्रिया हो रही है। वह ब्रह्म महान ब्रह्मरूप है, उस का अटल नियम उठे हुए वज्र के समान है। जो ज्ञानीजन उस ब्रह्म को सब का नियामक, न्याय कर्ता और जीवनाधार जानते हैं वे मुक्त हो जाते हैं।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३॥

उसी परमेश्वर के भय से अग्नि जलती है, उसी के कठोर नियम के अनुकूल सूर्य तपता है, उसी के नियम से इंद्र, वायु और पांचवाँ मृत्यु दौड़ दौड़ कर कार्य करते हैं।

इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्षरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४॥

यदि मनुष्य इस शरीर को छोड़ने से पूर्व ही उस परम पिता परमात्मा को जान सका तो तो जन्म-मरण चक्र से मुक्ति प्राप्त कर लेता है, अन्यथा कल्प कल्पान्तरों तक इन जन्म-मरणशील लोकों मे शरीर भाव को प्राप्त करता है।

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ।
यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके
॥५॥

जैसे स्वच्छ दर्पण में अपना दर्शन होता है, वैसे ही शुद्ध आत्मा में परमात्मा का दर्शन होता है। जैसे स्वप्न में अनेक पदार्थ अपने ही आप सन्मुख जाते हैं वैसे ही पुण्यमय जन्म में प्रभु के दर्शन होते हैं। जैसे जल के अन्दर सब साफ़ साफ़ दिखाई देता है, वैसे ही भजन के साथ ध्यान करने से भगवान् दिखाई देते हैं, जैसे छाया और धूप का भेद स्पष्ट मालूम होता है वैसे ही मूर्द्धा के अन्दर निर्बीज समाधि से पुरुष और प्रकृति का भेद स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

यहाँ जगह पितृ लोक का अर्थ पुण्यमय जन्म गन्धर्व लोक का अर्थ जहाँ भजन से आनन्द मनाया जाय और ब्रह्म लोक का अर्थ ब्रह्माण्ड अर्थात् मूर्द्धा है।

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६॥

इन्द्रियाँ आत्मा से सर्वथा भिन्न हैं, और मृत्यु ये भी शरीर के धर्म हैं आत्मा से इनका कुछ सम्बन्ध नहीं ऐसा जान कर धीर पुरुष कभी शोक युक्त नहीं होता।

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७॥

इन्द्रियों से मन सूक्ष्म हैं, मन से सत्वगुण युक्त बुद्धि उत्तम है बुद्धि से यह महत्तत्व उत्तम है, महत्तत्व से अव्यक्त नामक प्रकृति सूक्ष्म है।

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८॥

अव्यक्त से परम पुरुष परमात्मा सूक्ष्म है। जो व्यापक है और शरीर रहित है, इसी परमात्मा देव को जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है और आनन्द को प्राप्त होता है

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९॥

उस अचिन्त्य अव्यक्त स्वरूप परमेश्वर का रूप इन इन्द्रियों के सामने नहीं आता, इन का दर्शन आँखों से नही किया जा सकता। वह परमेश्वर केवल हृदय से, बुद्धि से, और मन से ही विचारे जा सकते है। जो इस प्रकार उनको जानते हैं, वह मुक्त हो जाते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १०॥

जब पांचों ज्ञानेन्द्रिय मन के साथ आत्मा में स्थित हो जाएँ और बुद्धि भी चेष्टा न करे उसी अवस्था को को समाधि अथवा परमगति - जीवन्मुक्त दशा कहते हैं ।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ ११॥

इसी इन्द्रियों की स्थिर अवस्था को मुनिजन योग मानते हैं। उस समय योगी प्रमोद रहित और इन्द्रियों की वासना से भी रहित हो जाता है, योग में ज्ञान की उत्पत्ति होती है और कर्म का नाश हो जाता है।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १२॥

जो परमात्मा वाणी मन, और आँखों से नहीं जाना जा सकता। वह आत्मा है ऐसा कहने वाले मनुष्यों से भिन्न मनुष्य उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् नास्तिक मनुष्य भला उन को कैसे प्राप्त कर सकता है।

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥ १३॥

ईश्वर के होने और न होने में, तर्क से, जो मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व को जान लेता है अर्थात यदि ईश्वर न होता तो इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे होती इत्यादि तर्क से जो मनुष्य ईश्वर की सत्ता का अनुभव कर लेता है। उस का तत्व ज्ञान प्रदीप्त हो जाता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४॥

जब मनुष्य के हृदय की समस्त कामनाएं नष्ट हो जाती हैं। तब यह मरणधर्मा मनुष्य मुक्त हो जाता है और मुक्ति दशा में ब्रह्म को प्राप्त करता है।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥ १५॥

जिस समय मनुष्य के जीवन में उसके हृदय की सम्पूर्ण ग्रंथियों का छेदन हो जाता है अर्थात काम, क्रोध, द्वेष, अविद्या आदि हृदय की

सारी गांठे खुल कर टूट जाती हैं तब मनुष्य अमृत पद को प्राप्त होता है, निश्चय ही यही वेदांत का सार युक्त उपदेश है। यही मर्म है।

मरण समय में योगी क्या करे वह कहते हैं:

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥ १६॥

इस शरीर में हृदय के अन्दर एक सौ एक नाड़ियां हैं, उनमें से एक सुषुम्णा नाड़ी हृदय से चलकर मस्तक में जाती है। उस नाड़ी के साथ ब्रह्माण्ड द्वारा जब जीवात्मा शरीर से निकलता है तब वह मुक्ति को प्राप्त होता है, उस नाड़ी के सिवाय अन्य नाड़ियों से जाने वाला जीवात्मा जन्म मरण के प्रवाह को प्राप्त होता है।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण ।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७॥

उक्त प्रकार से हृदय के स्थान मे अंगुष्ठ मात्र रूप से रहने वाला जीवात्मा है योगी को चाहिये कि प्रयाण काल में धैर्य के साथ उसे अपने शरीर से ऐसे निकाले जैसे सरकंडों की गठरी में से एक सींक खींची जाती है, इस आत्मा को शुद्ध, पवित्र और अमृतस्वरुप समझें।

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥ १८॥

मृत्यु द्वारा कही हुई इस सम्पूर्ण आत्म विद्या और योग की विधि को प्राप्त करके नचिकेता ने ब्रह्म भाव को प्राप्त कर लिया। वह धर्माधर्म शून्य, पाप रहित, और मृत्यु हीन हो गए। जो कोई अन्य भी आध्यात्म तत्व को इस प्रकार जानेगा वह भी नचिकेता के समान अमर हो जायगा।

॥ इति द्वितीयाध्याये तृतीया वल्ली ॥

॥ तृतीय वल्ली समाप्त ॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्ति पाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

ॐ तत् सत् ॥

॥ ॐ इति यजुर्वेदीया कठोपनिषद् समाप्त॥

॥ यजुर्वेद वर्णित कठोपनिषद समाप्त॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥